इकाई 8 संघर्ष की स्थिति का शमन

संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 संघर्ष क्या है?

8.3.1 अंतर्वैयक्तिक/अंतःवैयक्तिक संघर्ष

8.3.2 अंतर्वैयक्तिक संघर्ष

8.4 संघर्ष से लाभ

8.5 संघर्ष से नुकसान

8.6 संघर्ष उपशमन के विविध उपागम

8.7 संघर्ष प्रबंधन के प्रभावी कौशल

8.8 सारांश

8.9 संदर्भ एवं कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

संघर्ष (द्वंद्व/टकराव) और विवाद जीवन के हिस्से हैं। कोई समाज, समुदाय, संगठन या अंतरवैयक्तिक (दो या अधिक व्यक्तियों के बीच) संबंध ऐसा नहीं होगा जिसे कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं अपने दैनिक जीवन में संघर्ष का सामना न करना पड़ा हो। संघर्ष की स्थिति तब पैदा होती है जब व्यक्ति या समुदाय अपने उन लक्ष्यों को प्राप्त करने में एक-दूसरे को पीछे छोड़कर खुद आगे बढ़ जाने की होड़ में लग जाते हैं जो परस्पर मेल खाते दिखाई नहीं पड़ते यानी ये लक्ष्य अकसर उन लोगों, समाजों आदि के हितों के परस्पर विरूद्ध होते हैं। संघर्ष एक और शारीरिक और भावनात्मक – दोनों रूपों में नुकसान पहुँचाने वाला हो सकता है तो दूसरी ओर सभी पक्षों के लिए वह हितकर और उत्पादक भी बन सकता है। संघर्ष से तनाव उत्पन्न होता है। अतः यह ऐसा विषय है जिस पर गंभीरता और विस्तार से विचार करना आवश्यक है। इस इकाई में हम संघर्ष-प्रबंधन और उसके समाधान के तरीकों से आपका परिचय कराएँगे। यहीं हम आपको अंतरा-वैयक्तिक संघर्ष (यानी आंतरिक संघर्ष) और अंतरवैयक्तिक संघर्ष (यानी एकाधिक लोगों के बीच होने वाला संघर्ष) की जानकारी देंगे; साथ ही संघर्ष से होने वाले हित-हित की भी चर्चा करेंगे। संघर्ष के समाधान के विभिन्न उपागमों और संघर्ष के शमन के लिए आवश्यक कौशलों का भी आपको परिचय देंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- संघर्ष की संकल्पना/अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे;
- अंतरा-वैयक्तिक और अंतरवैयक्तिक संघर्ष में भेद कर सकेंगे;

- अंतरा-वैयक्तिक और अंतरवैयक्तिक संघर्ष की प्रकृति और उनके समान कारणों की पहचान कर सकेंगे;
- संघर्ष से होने वाले लाभों (हितों) पर विचार कर सकेंगे;
- अनियंत्रित संघर्ष के अहितकर प्रभावों की विवेचना कर सकेंगे;
- संघर्ष के समाधान/शमन हेतु लोगों द्वारा अपनाए गए विभिन्न उपागमों को जान सकेंगे; और
- आप अपने व्यावसायिक जीवन में संघर्ष के समाधान हेतु उन तकनीकों को लागू कर सकेंगे।

8.3 संघर्ष क्या है?

संघर्ष मानवीय अंतःक्रिया के दौरान घटने वाली एक सामान्य परिघटना है। इसे आप ऐसी किसी भी स्थिति के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जहाँ बेमेल या परस्पर विरूद्ध क्रियाकलाप, भावनाएँ या इरादे साथ-साथ घटित हो रहे हों। संघर्ष एक व्यक्ति के मन में घटित हो सकता है और एक-दूसरे को जानने वाले दो या दो से अधिक लोगों के बीच भी हो सकता है। यही नहीं, संघर्ष कई ऐसे अपरिचित व्यक्ति समूहों के बीच भी देखा गया है जिनके विचार, मत, दृष्टिकोण, कार्य-शैलियाँ, अभिवृत्तियाँ, मान्यताएँ आदि-आदि भिन्न-भिन्न हैं। परिणामतः संघर्ष व्यक्तियों के बीच भौतिक स्वरूप ग्रहण कर सकता है और केवल सांकेतिक भी हो सकता है जो प्रायः शब्दों और क्रियाओं के माध्यम से ही व्यक्त हो। संघर्ष की अभिव्यक्ति के कई तरीके हो सकते हैं, जैसे – मौखिक स्तर पर अशोभनीय आलोचना कर, एक-दूसरे पर दोषारोपण कर, धमकियाँ देकर या फिर शारीरिक रूप से लोगों के लड़-झगड़कर अथवा और संपत्ति को क्षति पहुँचा कर। कभी-कभी संघर्ष अभिव्यक्ति नहीं पाता, अर्थात् वह एक-दूसरे से कतराने रहने से या फिर दूसरे की बातों को न मानने से ही प्रकट हो जाता है।

संघर्ष कई बार महत्वपूर्ण नए विचारों और कार्यों को नए तरीके से करने का उत्प्रेरक भी बनता है। फिर भी यदि संघर्ष की अति हो जाए तो उससे ध्यान का संकेंद्रण विचलित हो जाता है और कार्य टुकड़ों-टुकड़ों में विभाजित होने लगता है। संघर्ष को इसलिए उसके कारणभूत मुद्दों के विचार से परिभाषित किया जाता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कोई विद्यार्थी अपने अध्यापक को ठीक प्रकार से न पढ़ाने का दोषी माने और परिणामस्वरूप उसका अध्यापक उसके परीक्षा-अंकों में से पाँच अंक घटा दे, या फिर उसकी शिकायत मुख्याध्यापक से करे, या विद्यार्थी के पास जाकर उससे मित्रवत् बातचीत करे और अपने पर दोषारोपण के कारण जानना चाहे – तो इसमें से कौन-सा तरीका बेहतर होगा? निश्चय ही, तीसरा तरीका। यदि वह इस तरीके को अपनाता है तो इस बात की अधिक संभावना होगी कि उस विद्यार्थी के मन में अध्यापक के प्रति पुनः आदर भाव जाग जाए, वह अध्यापक के कहने के अनुसार फिर से काम करने लगे। इस तरीके से अधिगम की प्रक्रिया अधिक सफल होगी। इस तरीके से उलट, यदि वह विद्यार्थी को दंडित करता है, या उसे डाँटते हुए बुरा-भला कहता है, तो, सच मानें, भले ही वह लड़का उस समय चुप रहे, पर उसके दृष्टिकोण/विचार में किसी तरह का बदलाव नहीं होगा। संघर्ष दो प्रकार का होता है – अंतरा-वैयक्तिक और अंतरवैयक्तिक संघर्ष। यहाँ हम पहले अंतरा-वैयक्तिक संघर्ष पर विचार करते हैं।

8.3.1 अंतर्वैयक्तिक/अंतःवैयक्तिक संघर्ष

"मेरे मित्र की पार्टी में जाऊँ या कल होने वाली लघु परीक्षा की तैयारी करूँ?"

अध्यापक ने मुझसे कहा – 'मुख्याध्यापक के पास जाओ या यह वाक्य 100 बार लिखो, "मैं अपना गृहकार्य पूरा करूँगा। बताएँ, मैं क्या करूँ?"

"कक्षा में जाकर पढाऊँ या यहीं बैठकर मूल्यांकन कार्य पूरा करूँ?"

प्रत्येक व्यक्ति में प्रायः (1) कई एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा (होड़) करने वाली आवश्यकताएँ और भूमिकाएँ होती हैं, (2) इनकी पूर्ति करने के कई रास्ते होते हैं, (3) आवश्यकताओं और लक्ष्यों के बीच कई प्रकार की बाधाएँ होती हैं तथा (4) अभिप्रेत लक्ष्यों से कई सकारात्मक और नकारात्मक (दोनों प्रकार के) पक्ष जुड़े होते हैं। उपर्युक्त इन सभी बातों की वजह से व्यक्ति की समायोजन प्रक्रिया जटिल और परेशानी भरी हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप संघर्ष का जन्म होता है। आइए, अब हम यह जान लें कि अंतरा-वैयक्तिक संघर्षों का जन्म किन कारणों से होता है। जो सामान्य कारण बताए गए हैं। वे हैं:

1) **कुंठा (हताशा)** : जब व्यक्ति किसी लक्ष्य को पाना चाहता है पर उसे लगता है कि उसे पाने में तो कई रूकावटें आ रही हैं तब उसमें कुंठा का जन्म होता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए, कोई व्यक्ति प्यासा है और जब वह पानी के घड़े के पास पहुँच कर देखता है कि वह तो खाली है तब उसमें कुंठा पैदा होती है। ऐसी ही स्थिति का दूसरा उदाहरण है – विद्यार्थी अपने अध्यापक को प्रसन्न करना चाहता है ताकि उसे संबंधित विषय में अच्छे अंक मिल सकें पर जब देखता है कि उसे पर्याप्त अंक नहीं मिले हैं।

2) **लक्ष्य (संबंधी) संघर्ष** : संघर्ष का एक सामान्य स्रोत है – लक्ष्य जिसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के लक्षण हों या फिर दो से अधिक प्रतिस्पर्धात्मक लक्ष्य हों। लक्ष्य संबंधी संघर्ष तीन प्रकार के माने गए हैं:

   क) **उपागम बनाम उपागम का संघर्ष** : इस स्थिति में व्यक्ति के सामने दो या दो से अधिक उपागमों का विकल्प होता है और तब उसके सामने यह समस्या होती है कि वह उनमें से किस विकल्प को चुने। मान लीजिए, किसी विद्यार्थी को दो अच्छी संस्थाओं में दाखिला मिल जाता है तब उसके मन में किसी एक को चुनने का संघर्ष (द्वंद्व) होता है। यह स्थिति तनावपूर्ण तो होती है पर बहुत कष्टकारी नहीं। दूसरी स्थिति लें। मान लीजिए, आपके विद्यालय में कम्प्यूटर प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए दो प्रायोजकों का प्रस्ताव है। आपको उन दोनों में से एक का चयन करना होगा।

   ख) **उपागम-परिहार द्वंद्व** : इस स्थिति में व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक उपागम से अभिप्रेरित तो होता है पर साथ ही वह उसका परिहार करने (छोड़ देने) के लिए भी तैयार रहता है क्योंकि उस व्यक्ति के लिए उस लक्ष्य में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के लक्षण निहित होते हैं। इसी तरह, मान लीजिए, किसी विद्यार्थी को अपनी रुचि का विषय तो मिल जाता है पर हो सकता है उसका अध्यापक उसकी पसंद का न हो। ऐसी स्थिति उस विद्यार्थी को बाध्य कर देगी कि वह सावधानीपूर्वक विकल्प का चयन करे। ऐसा करते समय उसे भावी परिणाम को ध्यान में रखते हुए उस उपागम के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों पर विचार करना पड़ेगा। ऐसी ही तीसरी स्थिति भी देखें –

किसी अध्यापक को बहुत अच्छी नौकरी मिल रही है, पर उसका कार्य स्थल बहुत गंदी जगह पर है। यह स्थिति भी उसके लिए उपागम-परिहार द्वंद्व का कारण बनेगी।

ग) **परिहार-परिहार द्वंद्व** : ऐसी स्थिति तब पैदा होगी जब व्यक्ति दो या अधिक नकारात्मक किंतु परस्पर भिन्न लक्ष्यों को नकारने के लिए अभिप्रेरित होता है। मान लीजिए, कोई अध्यापक अन्य विद्यार्थियों की तुलना में किसी विद्यार्थी विशेष को ओछा समझते हुए लगातार उसकी निंदा करता रहता है तो ऐसे समय में उस विद्यार्थी को इस द्वंद्व का सामना करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में वह चाहे तब भी कक्षा छोड़कर नहीं जाना चाहेगा क्योंकि उसे डर है कि तब वह अध्यापक या तो उसके अभिभावकों को इसकी सूचना दे देगा या फिर परीक्षा में उसकी उत्तर-पुस्तिकाओं में दस अंक कम दे सकता है। इसी तरह, मान लीजिए, आप अपने मुख्याध्यापक वाले पद से संतुष्ट नहीं है, पर आप उस पद को छोड़ भी तो नहीं सकतीं क्योंकि यह विकल्प और भी अधिक दुखदायी है। ये सभी स्थितियाँ अत्यंत/अधिकतम तनाव पैदा करने वाली हैं। इन्हें आप "इधर कुँआ, उधर खाई" (यानी अत्यधिक दुविधाजनक स्थिति) के दृष्टांत मान सकती हैं।

3) **भूमिका द्वंद्व** : संघर्ष की यह स्थिति तब पैदा होती है जब व्यक्ति की प्रत्याशाएँ (अपेक्षाएँ) या तो परस्पर भिन्न हों या विरोधी, और ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति एक प्रत्याशा का त्याग किए बिना दूसरी प्रत्याशा को प्राप्त नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, मान लीजिए, एक अच्छे गायक विद्यार्थी को उसके अभिभावक किसी अन्य विषय पर ध्यान केंद्रित करने के लिए बाध्य कर देते हैं, जबकि संगीत शिक्षक की इच्छा है कि संगीत के रियाज पर अपेक्षाकृत अधिक समय लगाए। इस तरह का भूमिका द्वंद्व मनोवैज्ञानिक तनाव को जन्म देता है जो आगे चलकर, संवेगात्मक समस्याओं में परिणत हो जाता है, यानी उसके कार्य-निष्पादन में कमी आ जाती है, उसकी अभिप्रेरक शक्ति कमज़ोर हो जाती है और दक्षता शिथिल हो जाती है। इन सबका असर अंततोगत्वा उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

क्रियाकलाप

अपने हाल ही में जिन अंतरा-वैयक्तिक संघर्षों का अनुभव किया हो (भले ही वे सामाजिक और व्यावसायिक स्तर पर हों) उन्हें नीचे लिखिए।

1) *कुंठा (हताशा संबंधी)*

.....

.....

.....

.....

2) *उपागम-उपागम संबंधी*

.....

.....

.....

3) *परिहार-परिहार संबंधी*

.....

.....

.....

.....

.....

4) *भूमिका संबंधी*

.....

.....

.....

.....

.....

8.3.2 अंतर्वैयक्तिक संघर्ष

- स्थान प्राप्ति के लिए दो विद्यार्थियों के बीच संघर्ष
- एक ही लड़की के साथ दोस्ती करने के बारे में दो लड़कों की प्रतिस्पर्धा
- अध्यापक पढ़ाना चाहते हैं किंतु विद्यार्थी चाहते हैं कि उस कालावधि (पीरियड) में छुट्टी रहे (पढ़ाई न चले)।
- मुख्याध्यापक के साथ राधा का दुर्विनीत व्यवहार
- आप चाहते हैं कि अमुक अध्यापक अतिरिक्त दायित्व का वहन करें किन्तु अध्यापक उससे मुक्ति चाहते हैं।

ऊपर वाले प्रसंग अंतरवैयक्तिक संघर्ष के उदाहरण हैं। संघर्ष की इन स्थितियों के लिए कम-से-कम ऐसे दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जिनके विचार परस्पर मेल नहीं खाते, जो संदेहास्पद या अस्पष्ट बातों को सहन नहीं कर पाते तथा जिनकी आदत बिना सोचे-विचारे किसी भी (उचित या अनुचित) निर्णय पर पहुँच जाने की होती है। अंतरवैयक्तिक संघर्ष पैदा क्यों होते हैं? इनके सामान्यतः मान्य कारण हैं:

1) **आदतें और मान्यताएँ** : दूसरों के साथ संबंध स्थापित करते समय अब तक हमने जो कुछ सीखा है उसका उपयोग करते हैं – यानी अपनी आदतों का, अपने विचारों का, अपने विश्वासों-मान्यताओं का। और हमारी ये आदतें, विचार, विश्वास और मान्यताएँ स्वयं अपने बारे में और अन्य लोगों के बारे में ही विकसित हुई नहीं होती, राजनीति, धर्म, जीवन शैली आदि के बारे में भी बन जाती हैं। हम इन्हें अपने दैनिक व्यवहार में सम्मिलित कर लेते हैं और मान लेते हैं कि कुछ भी करने का यही "सही" तरीका है, भले ही वह सुबह सैर करते समय पहने जाने वाली वेशभूषा से संबंधित हो या फिर अपने विद्यार्थियों को जीवनभर के लिए अपेक्षित अभिवृत्तियाँ सिखाना हो या उनकी मान्यताओं को संस्कारित करना हो। नृजातीय, सांस्कृतिक और लिंगाधारित जितनी भी विभिन्नताएँ विषमताएँ दिखाई पड़ती हैं वे सब कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं

हमसे मेल न खाने वालों को चिढ़ाती प्रतीत होती हैं। अध्यापकों और विद्यार्थियों के बीच संघर्ष की जो स्थिति उत्पन्न हो जाती है उसका एक मुख्य कारण यही विचारों का मतभेद है। अध्यापक चाहते हैं कि किसी तरह पाठ्यविवरण के अनुसार वे अपना अध्यापन-कार्य पूरा कर लें। विद्यार्थी मौजमस्ती करना चाहते हैं, खेलकूद में अधिक विश्वास करते हैं। इसलिए तो वे कक्षा में बातचीत करने लगते हैं। अंग्रेज़ी का अध्यापक मानता है कि विद्यार्थी यदि उसका प्रयोग परस्पर बातचीत के दौरान करें तो वे भाषा जल्दी सीखेंगे। इसलिए, यदि वह विद्यार्थियों को वाक्-कौशल बढ़ाने के लिए कक्षा में अंग्रेज़ी बोलने के लिए अवसर प्रदान करता है तो हो सकता है कि उसका वरिष्ठ साथी या मुख्याध्यापक यह सोचे कि कक्षा में अनावश्यक शोर हो रहा है और इसके लिए वह अध्यापक को डाँटे-डपटे। तो इस डाँट-डपट का कारण भी वही दृष्टिकोण की भिन्नता है।

2) **सीमित संसाधन** : मान लीजिए, एक ही संदर्भ पुस्तक है और उसे दो विद्यार्थी एक ही समय देखना चाहते हैं, या धनराशि सीमित है और उसका उपयोग कई कार्यक्रमों के लिए करना हो, या फिर छात्रा-प्रमुख का एक ही पद हो और उसे प्राप्त करने की आकांक्षा रखने वाली तीन छात्राएँ हों तो इन तीनों ही स्थितियों में संघर्ष की संभावना बनती है।

3) **परिवर्तन की आवश्यकता**: नीचे दिए कथनों को ध्यानपूर्वक पढ़े। कल्पना कीजिए कि कोई व्यक्ति इन्हें आपको संबोधित करके कह रहा है। इन कथनों के प्रति आपकी जो प्रतिक्रियाएँ हों उन्हें व्यक्त करें:

   - आपको चाहिए कि आप विद्यालय की गतिविधियों पर अधिक ध्यान दें।
   - आपको चाहिए कि आप और अधिक अच्छी तरह से पढ़ाएँ।
   - आपको चाहिए कि आप विद्यालय के लिए और अधिक धनराशि संगृहीत करें।
   - आपको अपना हस्तलेख सुधार लेना चाहिए।
   - आपको अपने कमरे की साज-सजावट अच्छी लगती है। वहाँ सब कुछ यथास्थान है। मान लीजिए, एक दिन आपका मित्र आकर आपसे कहे, "तुम्हारा कमरा बहुत अस्तव्यस्त लग रहा था। अब देखों, मैंने इसे कितना व्यवस्थित कर दिया है।"

   ये उदाहरण हैं – उन सब स्थितियों के जब कोई आपके पास आकर कहे कि व्यवस्था में परिवर्तन अपेक्षित है, या वह स्वयं, आपकी सहमति के बिना ही, आपके आसपास की व्यवस्था में परिवर्तन करना शुरू कर दे। इन स्थितियों के प्रति आपकी जो प्रतिक्रियाएँ होंगी, जरा उन पर भी ध्यान दें तो आपको महसूस होगा कि हम लोगों में से अधिकतर की इन समस्याओं पर जो प्रतिक्रिया होगी वह मूक/निष्क्रिय आक्रामता से लेकर खुले प्रतिरोध पर कुछ भी हो सकती है। परिवर्तन का परिणाम अंतरवैयक्तिक संघर्ष हो सकता है।

4) **निम्नस्तरीय (घटिया) संप्रेषण कौशल**: संप्रेषण का स्तर यदि घटिया हो तो उससे संप्रेषण में रिक्तियाँ रह जाने की संभावना है। उदाहरणार्थ, आप अपने सहकर्मी अध्यापकों में से किसी की तहेदिल से प्रशंसा कर रहे हैं, पर उसे यह लगे कि आप तो उसकी व्याज निंदा कर रहे हैं यानी आपकी प्रशंसा उन्हें व्यंग्य की तरह लगे तो इसे संप्रेषण कौशल की कमी माना जाएगा। अज्ञान या अल्पज्ञान प्रायः संघर्ष को जन्म देता है।

5) **स्पष्ट लक्ष्यों का अभाव:** जब लक्ष्य ही स्पष्ट न हों या दोनों पक्षों को लक्ष्यों का ज्ञान न हो तो इससे गलतफहमी (भ्रांति) पैदा हो सकती है और मतभेद की खाई चौड़ी हो सकती है। यही संघर्ष की जड़ है।

6) **शक्ति और स्तर में अंतर:** जब शक्ति का आवंटन समान न हो या दो पक्षों के बीच स्तर का अंतर हो तब भी अंतरवैयक्तिक संघर्ष जन्म ले सकता है। मान लीजिए, कोई अध्यापक पहले से ही बोझ तले दबा हो और आप उसे अतिरिक्त ज़िम्मेदारी सौंपना चाहें और वह मना कर दे। तो क्या होगा? दूसरा उदाहरण लीजिए। कोई विद्यार्थी अपने अध्यापक को कुछ करने का आदेश दे तो क्या होगा? एक और देखें, मान लीजिए, कोई नवनियुक्त स्नातकस्तरीय अध्यापक किसी अनुभवी और पीएच.डी. प्राप्त अध्यापक को शिक्षण-विधि सिखाना चाहे तब क्या होगा? इन सभी स्थितियों में संघर्ष के सिवाय और क्या हो सकता है? ऐसा संघर्ष या तत्संबंधी समस्याएँ भी अंतरवैयक्तिक संघर्ष के उदाहरण हैं।

7) **मूल्यों और हितों में टकराव :** प्रायः विद्यार्थियों और अध्यापक के बीच संघर्ष होते हुए देखा गया है। संघर्ष का कारा होता है दोनों पक्षों के मूल्यों और हितों के बीच टकराव। विद्यार्थी चाहते हैं कि कम-से-कम एक पीरियड तो उन्हें खाली मिलें क्योंकि वे पढ़ते-पढ़ाते थक चुके हैं और कुछ समय के लिए आराम चाहते हैं। अध्यापक की समस्या है – पाठ्यक्रम पूरा करना और इसीलिए वह पढ़ाने में छूट देना नहीं चाहता। अन्य उदाहरण लीज़िए। अध्यापक का इस बात पर बल है कि सभी विद्यार्थी प्रतिदिन विद्यालय में समय पर आएँ, पर देखें तो वह अध्यापक खुद देर से आता है। मुख्याध्यापक होने के नाते आपका कर्तव्य बनता है कि आप अध्यापकों और विद्यार्थियों पर समान रूप से उपस्थिति संबंधी नियमों को कड़ाई से लागू करें।

क्रियाकलाप

हाल ही में आप को अंतरवैयक्तिक संघर्ष की जिन स्थितियों का सामना करना पड़ा हो उनमें से किन्हीं दस स्थितियों का वर्णन करें। ऊपर जो करण गिनाए गए हैं उनमें से कौन-से कारण इन स्थितियों पर लागू होते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 संघर्ष से लाभ

संघर्ष से हमें यह जानकारी मिल जाती है कि लोगों के साथ हमारे जो संबंध चल रहे हैं उनमें ऐसी कौन-सी समस्याएँ हैं जिनका हमें समाधान ढूँढ़ना चाहिए। संघर्ष ही हमें परिवर्तन के लिए उकसाता है। इससे हमें यह भी पता चल जाता है कि कब हमें नए कौशलों को सीख लेना चाहिए, जैसे कम्प्यूटर के उपयोग को और कब हमें अपनी पुरानी आदतों को बदल देना या उनमें सुधार कर लेना चाहिए। उदाहरण के लिए, अपनी कक्षा में जनतांत्रिक परिवेश/वातावरण का निर्माण करना आदि। इससे आप अपने सहयोगियों और विद्यार्थियों के साथ व्यवहार में भी जनतांत्रिक तरीके अपना सकते हैं। संघर्ष समस्याओं

का सामना करने वाली हमारी शक्ति को ऊर्जस्वित करता है और उसके लिए प्रेरणास्पद भी होता है। द्वंद्वात्म या कह सकते हैं संघर्षशील स्थितियाँ हमारे मन में उत्कंठा की चिनगारी प्रज्वलित देती हैं और हमारी रुचि को उद्दीप्त कर देती हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई विद्यार्थी अध्यापक से कहे कि उनसे मिली जानकारी या सूचना ठीक नहीं है तो विद्यार्थी पर नाराज़ हुए बिना या उसे डाँटे-फटकारे बिना अध्यापक उस विद्यार्थी से कह सकता है कि वह पहले उसे संकल्पना का विस्तृत अध्ययन कर ले और फिर उसकी संक्षिप्त प्रस्तुति कक्षा में अन्य विद्यार्थियों के सम्मुख भी करे। ऐसा करना बेहतर होगा। जब लोगों के सामने समस्याओं के समाधान के कई विकल्प उपस्थित होते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे सर्वाधिक उपयोगी विकल्प चुनना ही तय करें। संघर्ष व्यक्ति में आत्म-जागरूकता का स्तर बढ़ा देता है। इससे उसे यह पता चल जाता है कि वे कौन से कारण हैं जिनसे वह अर्तिशीघ्र क्रोधित या भयभीत हो जाता हे या कि संघर्षों से छुटकारा पाने के लिए-उसे क्या-क्या उपाय करने चाहिए। संघर्ष हमारे संबंधों में गहराई लाता है और उन्हें समृद्ध भी करता है क्योंकि यदि दोनों पक्ष सदाशयतापूर्वक समस्याओं के हल के निमित्त प्रयत्न करें तो स्वतः ही उनमें परस्पर प्रतिबद्धता विकसित हो जाएगी। संघर्ष सर्वव्यापक हैं और उनसे बचा भी नहीं जा सकता। यदि कोई उन्हें टालने की कोशिश करें या उनके अस्तित्व से इनकार करे या फिर उन्हें दबा देने का भरसक प्रयत्न करे तो शायद वह सफल नहीं होगा; उल्टे, ऐसा करने से कई गंभीर समस्याएँ उठ खड़ी हो सकती हैं। संघर्ष इस बात के संकेतक हैं कि लोगों के विचार अलग-अलग या कि परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं और जो लड़ाई-झगड़े के दौरान या पुनः आपसी मेल-मिलाप के समय रचनात्मकता की ज्योति जला सकते हैं, संबंधों को पुनः पुष्ट कर सकते हैं, उत्पादकता को प्रेरित कर सकते हैं इत्यादि।

8.5 संघर्ष से नुकसान

संघर्ष लोगों में तनाव का जन्मदाता है। इससे उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है, उनमें दुष्चिंता की भावना, अपराध बोध और कुंठा/हताशा आदि जग जाती हैं जो परस्पर अविश्वास और एक-दूसरे पर संदेह का वातावरण पैदा कर देने वाली होती हैं। संघर्षों के कारण प्रायः सहयोग की भावना में ह्रास दिखाई पड़ने लगता है, यहाँ तक कि वह लुप्त भी हो जाता है। आपसी संप्रेषण भंग हो जाता है कार्य की सामान्य गति मंद पड़ जाती है और परिणामतः अस्थिरता और अव्यवस्था फैल जाती है। इनसे स्पष्ट निर्णय में बाधा पड़ती है और इस तरह दो टूक फैसला या समुचित निश्चय नहीं हो पाता। संघर्ष अथवा द्वंद्व के रहते हुए व्यक्ति अपने कार्य में रस नहीं ले पाता उसे मानसिक आनंद का साधन नहीं बन पाता। जिस काम को सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए व्यक्ति में अच्छे शारीरिक कौशलों की आवश्यकता होती है, संघर्ष उनमें बाधक सिद्ध होता है, जैसे उसका पेशीय गति-नियंत्रण बिगड़ जाता है और उसे ऐसी कठिन परिस्थिति में डाल देता जो उसके लिए चुनौती के स्थान पर घातक सिद्ध होती है। संघर्षों से व्यक्ति के मस्तिष्क की सकारात्मक सोच को क्षति पहुँचती है और आप तो जानते हैं कि कार्य की गुणवत्ता के लिए सकारात्मक सोच कितनी अधिक आवश्यक है। व्यक्ति में नकारात्मक सोच के बढ़ जाने पर उसमें आत्म-विश्वास कम हो जाता है, वह किसी काम को दत्तचित्त होकर पूरा नहीं कर सकता, उसका दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है, विमनस्कता (चित्त के उचट जाने की स्थिति) की स्थिति का सामना नहीं कर पाता, आदि-आदि। संक्षेप में कहें तो, संघर्षों से कार्य या अध्ययन-अध्यापन में संकेंद्रण नहीं हो पाता और अभिप्रेरण शक्ति शिथिल हो जाती है।

क्रियाकलाप

संघर्षों से अधिकतम लाभ उठाने और उनके नकारात्मक प्रभावों से न्यूनतम हानि उठाने की योजना तैयार कीजिए। यह योजना निम्नलिखित तीन स्तरों वाली हो:

1) *मुख्याध्यापक और स्टाफ सदस्यों के बीच*

.....

.....

.....

2) *मुख्याध्यापक और विद्यार्थियों के बीच*

.....

.....

.....

3) *अध्यापकों और विद्यार्थियों के बीच*

.....

.....

.....

8.6 संघर्ष-उपशमन के विविध उपागम

आपने देखा कि संघर्ष-उपशमन या उसके निराकरण की हर व्यक्ति की अपनी-अपनी विशेष शैली होती है। इसके लिए वह जो तरीका अपनाता है। वह उसके व्यक्तित्व, उसकी अनोखी इच्छाओं, आवश्यकताओं और उसके मूल्यों पर निर्भर करता है। ये सब बातें उसके जीवन-प्रभात में ही निर्मित और पुष्ट हो जाती हैं। यद्यपि यह कहना सही है कि हर व्यक्ति हर समय विशुद्ध रूप से केवल एक ही तरीका नहीं अपनाता, वे सब किसी-न-किसी रूप में उसके व्यक्तित्व की मूलभूत प्रवृत्तियों और प्राथमिकताओं को उजागर करने वाली होती हैं। संघर्ष-उपशमन के लिए प्रयुक्त हर उपागम की अपनी-अपनी ताकतें और कमज़ोरियाँ होती हैं। संघर्ष-उपशमन के लिए व्यक्ति निजी तौर पर कोई भी उपागम अपनाए, पर हम उपागम का पहला चरण यह होना चाहिए कि वह व्यक्ति अपनी शैली विशेष के प्रति जागरूक बना रहे। इस जागरूकता में उस शैली के सकारात्मक बिन्दु यानी उसका शुक्ल पक्ष (लाभ) और नकारात्मक बिन्दु यानी उसका कृष्ण पक्ष (हानियाँ) दोनों ही सम्मिलित हैं।

संघर्ष को अपने वश में करने के पाँच तरीके

नीचे लिखे कथनों को ध्यानपूर्वक पढ़ें और जो कथन संघर्ष का सामना करने के आपके तरीके से मेल खाता हो, उस पर सही का निशान लगाएँ:

1) अन्य व्यक्ति कौन-सा तरीका अपनाते हैं, उस पर ध्यान दिए बिना मैं तो लक्ष्य प्राप्ति के अपने तरीके (पथ) पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ता रहता हूँ।

2) मैं यथासंभव संघर्ष की स्थिति को टालता रहता हूँ।

3) परस्पर समता बनी रहे – इसे ध्यान में रखते हुए मैं संघर्ष को टालने का प्रयत्न करता हूँ।

4) संघर्ष के उपशमन हेतु मैं अपने लक्ष्य के एक हिस्से का बलिदान तक करने को तैयार हूँ।

5) हम दोनों के हित में जो भी उचित लगे उसे अपनाने को मैं तैयार हूँ।

6) जब भी संघर्ष की स्थिति पैदा होती है तो उसे अपने नियंत्रण में लेने की मेरी पहली चाल होती है।

7) मेरे मतानुसार संघर्ष को टाल देना ही संघर्ष से निपटने का सबसे परिपक्व और समुचित तरीका है न कि बचकाने तौर पर उसके बारे में वाद-विवाद करते रहना।

8) संघर्ष के समय मैं प्रतिपक्ष को अपने रास्ते पर चलने देता हूँ और वह जो कहे उस पर मैं सहमत हो जाता हूँ।

9) मैं सोचता हूँ कि यदि मैं अपनी व्यक्तिगत चिंता को वाणी दूँ तो दूसरा पक्ष मुझसे संबंधविच्छेद कर लेगा।

10) मैं हमारी दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपलब्ध विकल्पों के भेद कर सकता हूँ।

11) अपनी माँगों की पूर्ति के लिए मैं परिवर्तनों के सभी विकल्पों को खुला रखना चाहता हूँ।

12) मैं अपना हाथ खींच लेता हूँ और अपने लक्ष्य को छोड़ देता हूँ।

13) मैं चाहता हूँ कि दूसरे मुझे स्वीकार करें।

14) सर्वजनीन हित के लिए मैं अपने संबंधों के एक हिस्से का त्याग करने को तैयार हूँ।

15) मैं अपने लक्ष्य और संबंधों के बीच समझौता करना चाहता हूँ।

16) संघर्ष में सफलता प्राप्त कर लेने पर मुझे आत्माभिमान का अनुभव होता है।

17) यदि किसी समस्या का समाधान करने की इच्छा हो तो उसका समाधान हो ही जाता है।

18) मैं संघर्ष को कुछ समय के लिए टाल देने का प्रयत्न करता हूँ।

19) मेरे विचार से संघर्ष के बारे में चर्चा छेड़ना संबंधों में दरार डालना है।

20) दो अतियों के बीच में मध्यम मार्ग खोजने की चेष्टा करता हूँ।

21) संघर्ष में मिली पराजय मुझे उदास और शिथिल कर देती है और मैं ठगा-ठगा सा महसूस करने लगता हूँ।

22) संघर्ष की स्थिति में मैं अपने को असहाय महसूस करने लगता हूँ।

23) दूसरे मुझे पसंद करते रहें – इसके लिए मैं अपने लक्ष्य को त्याग देता हूँ।

24) मुझे सदा सार्वजनीन हित की चिंता रहती है।

25) जब तक मैं तनावमुक्त नहीं हो जाता और नकारात्मक भावनाओं का पूरी तरह से हल नहीं मिल जाता तब तक मुझे संतोष नहीं होता।

26) संबंधों की तुलना में मैं अपने लक्ष्य को अधिक महत्व देता हूँ।

27) मैं अन्य व्यक्ति के साथ अब तक बने संबंधों को त्याग देता हूँ।

28) मैं अपने संबंधों को बनाए रखने का प्रयत्न करता हूँ। मेरे विचार से किसी संघर्ष का हल ढूँढ़ना बेकार की बात है।

29) संघर्ष का हल ढूँढ़ते समय मैं अन्य पक्ष को अपने लक्ष्य का एक हिस्सा छोड़ देने के लिए बाध्य कर देता हूँ।

30) मैं अपने लक्ष्य को अति महत्व देने के साथ-साथ संबंधों को भी बनाए रखने में विश्वास करता हूँ।

31) मामलों की चर्चा को मैं इतना अधिक खींचता जाता हूँ कि अन्य पक्ष उससे उकता जाए और समस्या को सुलझाने के मेरे रास्ते को अपना ले।

32) संघर्षों को मैं दूर से ही नमस्कार करता हूँ (यानी उनसे बचकर चलता हूँ)।

33) मैं सोचता हूँ कि संघर्षों से लोगों को चोट पहुँचती है।

34) मैं ऐसा हल चाहता हूँ कि अपना लक्ष्य प्राप्त करने के साथ-साथ दूसरों के लक्ष्य भी प्राप्त हो जाएँ।

35) मैं प्रत्येक व्यक्ति के हित में किसी भी मामले को सुलझाने का प्रयत्न करता हूँ।

प्राप्तांक प्रतिरूप : नीचे मार्गदर्शक कुँजी दी जा रही है। इसे आधार बनाकर देखें कि आपका संघर्ष-प्रबंधन का स्तर किसके अधिक निकट है।

प्रभुत्वसूचक कथन सं. 1, 6, 11, 16, 21, 26, 31

परिहारसूचक कथन सं. 2, 7, 12, 17, 22, 27, 32

समंजनसूचक कथन सं. 3, 8, 13, 18, 23, 28, 33

सामकर (समझौतासूचक / मध्यममार्ग) कथन सं. 4, 9, 14, 19, 24, 29, 34

सहयोगात्मक कथन सं. 5, 10, 15, 20, 25, 30 35

प्रभुत्वः इस शैली के लक्षण हैं – प्रतिस्पर्धा और प्रभुत्व स्थापन। यह शक्ति प्रदर्शनोन्मुख शैली या तरीका है। इसका सीधा संबंध प्रत्यक्ष शारीरिक शक्ति प्रदर्शक आक्रामकता से है और यह तरीका दंडात्मक क्रियाविधि में विश्वास रखता है। जैसे, यदि कोई विद्यार्थी अध्यापक के कथन से सहमत न हो तो इस शैली का अनुसारण करने वाला अध्यापक तत्काल उसके गाल पर थप्पड मार देगा, या उसके कुछ अंक कम कर देगा या उसे असफल तक घोषित कर सकता है। इस शैली को अपनाने वाले व्यक्ति उन ताकतों के नुमाइन्दे होते हैं जो स्थिति को बिगाड़ने में यानी बदतर बना देने में विश्वास करते हैं। वे नहीं चाहते कि समस्या के मूल में जाकर उसके कारणों की खोजबीन की जाए। वे किसी नवप्रवर्तन करने वाले समाधान, या रचनात्मक हल को ढूँढ़ने का न तो प्रयत्न करते हैं और न ही उसे प्रोत्साहित करते हैं।

कथन सं. 1, 6, 11, 16, 21, 26, 31 के समर्थक व्यक्ति

परिहारः इस शैली के लक्षण हैं – परिहार (कतराना / बचना), उदासीनता, पलायन और उपेक्षा। जैसे – ऊपर का ही उदाहरण लें। इस स्थिति में अध्यापक या तो बात को हँसी में उड़ा देगा या फिर किसी अन्य विद्यार्थी को वह काम सौंप देगा और भविष्य में पहले वाले व्यक्ति को कभी कोई काम नहीं सौंपेगा, यहाँ तक कि उससे बोलेगा तक नहीं। यदि ऐसी ही स्थिति परिवार में घटित हो जाए तो देखा गया है कि लोग विवाद करने के बजाय किसी ओर काम में लग जाते हैं, जैसे टी.वी. चला देते हैं, आदि। इस स्थिति में जब परस्पर असहमतियाँ टाल दी जाती हैं तो मामलों को सुलझाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता।

यह वह शैली है जब न तो संघर्ष का प्रभावी समाधान ही हो पाता है और न ही उसकी समाप्ति हो पाती है।

कथन सं. 2, 7, 12, 17, 22, 27, 32

समंजनः इस शैली का लक्षण है समंजन यानी समायोजन यानी एक दूसरे के साथ मेल बिठा लेना। इस स्थिति में दोनों पक्ष परस्पर उदारता का परिचय देते हुए अपने अपने हितों को त्याग देते हैं। बल केवल आपसी हितों पर रहता है। उनके बीच जो असहमति की भावना होती है उस पर ज़ोर नहीं दिया जाता। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी वैसा ही करेगा जैसा अध्यापक कहेगा। इसका परिणाम अस्थायी हल निकालना तो हो सकता है किन्तु भविष्य में फिर कभी-न-कभी ऐसे मामले दुबारा उठ सकते हैं।

कथन सं. 3, 8, 13, 18, 23, 28, 33

समझौता : स्थितियों से समझौता कर लेना यानी मध्यमार्ग अपनाना मामलों को सुलझाने का यह एक परंपरागत तरीका है। इस स्थिति में तू भी ठीक, मैं भी ठीक वाली भावना काम करती है। पर प्रायः इसके लिए किसी तीसरे पक्ष की आवश्यकता पड़ती है जिसे 'मध्यस्थ' कहते हैं। इस स्थिति में न तो किसी को 'जीता' माना जाता और न ही 'हारा' क्योंकि दोनों ही पक्ष अपनी ओर से कुछ-न-कुछ बलिदान या त्याग तो करते ही हैं। मान लो, फुटबॉल के मैदान में दो नौजवान खिलाड़ी किसी बात पर भिड़ पड़ें और रैफरी तुरंत आकर दोनों को अलग कर दे तो यह मामला बीचबचाव करने का यानी तुरंत समझौता करा देने का अच्छा उदाहरण है। लक्ष्यों, अभिवृत्तियों या मूल्यों में जब टकराव की स्थिति पैदा हो जाए तो इस तरीके को प्रायः काम में लिया जाता है और यह तरीका तत्काल प्रभावी भी होता है। संघर्ष के समाधान का कभी-कभी यह एकमात्र तरीका ठीक माना जाता है किन्तु निश्चित जीत या हार जैसी प्रभावी स्थिति इसमें नहीं होती।

कथन सं. 4,9, 14, 19, 24, 29, 34

सहयोगः इस शैली का प्रमुख लक्षण हैः एक-दूसरे को मदद देना। संघर्ष के निराकरण का यह सबसे अच्छा तरीका माना जाता है। इसमें एक-दूसरे पर आक्रमण नहीं होता और न ही एक पक्ष की दूसरे पक्ष से सुरक्षा की आवश्यकता होती है। आवश्यकता होती है तो केवल आपसी मदद की यानी परस्पर सहायता की। यह तरीका अभिवृत्तियों में परिवर्तन का ऐसा शक्तिशाली मार्ग है जो संप्रेषण की पूरी धारा को ही बदल देता है। इसके आधार तत्व हैंः दोनों पक्षों की आवश्यकताओं की पहचान, दोनों के बीच व्यक्तिगत मतभेदों की स्वीकृति, फिर इनके होते हुए भी दोनों व्यक्तियों या पक्षों को हानि न पहुँचाते हुए केवल समस्याओं के निराकरण के उपाय ढूँढ़ना। सहयोग की भावना के फलस्वरूप अकसर यह देखा गया है कि दोनों पक्षों को जितना वे चाहते हैं उससे कुछ अधिक ही मिल जाता है। यह उपागम परस्पर हित साधन का यानी संघर्ष के समाधान का एक अच्छा तरीका माना जाता है।

कथन सं. 5, 10, 15, 20, 25, 30, 35

8.7 संघर्ष प्रबंधन के प्रभावी कौशल

संघर्ष प्रबंधन के कुछ प्रभावी कौशल निम्नलिखित हैं:

i) **आत्म-जागरूकता :** इससे अभिप्राय है – उन स्थितियों को अविलंब पहचान लेना जो गुस्से को भड़काने के लिए आग में घी डालने का काम करती हैं। भावावेग को बढ़ाने वाली उत्तेजक स्थितियाँ हो सकती हैं – भाव-भंगिमाएँ, कठोर शब्द, वाणी के स्वर में उतार-चढ़ाव, उंगली दिखा-दिखा कर कटु बात कहना आदि। इन सबसे संघर्ष पैदा ही

नहीं होता, बढ़ता भी है क्योंकि दूसरे पक्ष को इनसे चोट पहुँचती है, उन्हें तत्काल नकारात्मक प्रतिक्रिया पैदा करने को उकसाती हैं और वे आत्मरक्षा के लिए तैयार हो जाते हैं। अतः यदि एक पक्ष में आत्मजागरूकता हो तो वह अपने संवेगों पर काबू पा लेगा तथा परिणामस्वरूप संघर्ष टल जाएगा।

ii) **अहंवाची** (अर्थात् "मैं" से शुरू होने वाले) *कथन* : देखा गया है कि अधिकतर अध्यापक अपने वाक्य "मैं" से शुरू करते हैं (जैसे : मैं कहता हूँ कि, कृ'जोकि उनके अभिमान का, उनकी महत्ता का सूचक है। किन्तु कुछ अध्यापक इस अंहवाची "मैं" का प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं क्योंकि उनके अनुसार यह उन्हें कृत्रिम या अस्वाभाविक प्रयोग लगता है। इसके स्थान वे "मैं" का परंपरागत प्रयोग करना अधिक ठीक मानते हैं, जो इस प्रकार है:

'मैं सोचता हूँकृ' या 'मेरे विचार से कृकृ' (यह संवेग को अभिव्यक्त करने की शैली है), या 'जब' से वाक्य का आरंभ (जो व्यवहार के अनिर्णयात्मक प्रयोग का मुहावरा जैसा है) या 'चूँकि' से वाक्य का आरंभ (जो व्यवहार के मूर्त प्रभाव को व्यक्त करता है)।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए कोई अध्यापक विद्यार्थी को उत्तर ठीक प्रकार से लिखने के लिए कहता है और वह विद्यार्थी "मैं" युक्त कथन में जवाब दे, तब उसे कहना चाहिए "जब तुम मुझसे बदतमीज़ी से पेश आए तो मुझे तुम पर बहुत गुस्सा आया। पर यदि तुमने मेरी सलाह पर ध्यान दिया होता तो तुम्हें परीक्षा में काफी अच्छे अंक मिल सकते थे या कि तुम्हारा ग्रेंड बहुत अच्छा हो सकता था।"

"मैं" वाचक कथनों के प्रयोग से लगता है कि व्यक्ति अपनी भावनाओं और अपने कृत्यों की ज़िम्मेदारी खुद अपने पर ले रहा है। इस प्रकार के कथनों का प्रयोग होने पर वक्ता जैसे अपनी उन भावनाओं को और उन स्थितियों को स्पष्टता से प्रकट करना चाहता हो जिन्होंने उसे अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए उत्तेजित किया था। इस तरह से "मैं" वाचक कथनों को संघर्ष प्रबंधन की एक तकनीक माना जा सकता है क्योंकि ऐसे कथन संघर्षयुक्त व्यक्ति के कार्य और उसकी प्रतिक्रिया के बीच विराम की स्थिति के सूचक हैं। यह विराम की स्थिति उस व्यक्ति विशेष को और लगभग अन्य सभी व्यक्तियों को भी इतना अवसर ज़रूर प्रदान कर देती है कि वे किसी पूर्व क्रिया की तत्काल प्रतिक्रिया व्यक्त न कर बीच में यह सोचने को बाध्य हो जाएँ कि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए किन शब्दों का प्रयोग उसके/उनके लिए उचित होगा। हो सकता है कि "मैं" युक्त कथन पहले असुविधाजनक लगें पर इनके बार-बार प्रयोग किए जाते रहने पर वे बहुत ही प्रभावकारी सिद्ध होते हैं। विद्यार्थी भी यदि इनका लगातार अभ्यास करते रहें तो उन्हें परिस्थितियों के अनुकूल ढलने में अधिक समय नहीं लगेगा। बाद में इस तरह के प्रयोग भी उनके लिए सहज बन जाएँगे और वे अपनी भावनाओं को भी ठीक तरह से अभिव्यक्त कर सकेंगे। इसलिए विद्यार्थियों को भी चाहिए कि वे अपने कथन "मैं" युक्त कथनों में ढालने का प्रयत्न करते रहें। विद्यार्थी अध्यापक के मुख से तो "मैं" युक्त कथन सुनते ही रहते हैं। विद्यार्थी भी इस तरह की तकनीक के अभ्यासी हो जाएँगे और तब उन्हें "मैं" युक्त कथनों से "तुम" युक्त कथनों की तुलना करते हुए उनके बीच के अंतर की समझ आ जाएगी।

iii) **वाचेतर संप्रेषण कौशल** : इस प्रकार के कौशल में शब्दों का प्रयोग नहीं होता। केवल कार्य ही बोलता है अर्थात् कार्य ही वाणी का काम करता है। जैसे, कोई कहे, "इसका मेरे लिए बहुत महत्व है" ओर साथ ही अपनी आँखों की पुतलियाँ इधर-उधर घुमाता रहे तो आप किस पर विश्वास करेंगे – उसके शब्दों पर या उसकी अशाब्दिक

भाव-भंगिमा पर? निश्चय ही तब वह जो शब्दों में प्रकट कर रहा है उसकी सचाई पर आपको विश्वास नहीं होगा। उसके हावभाव ही यह प्रकट करने में समर्थ हैं कि वह अपने शब्दों के प्रति गंभीर नहीं है। इसी तरह मान लो कोई व्यक्ति आपसे कहे कि "अब उसे आपसे बात करने का समय" और आप देखें कि वह तो आपके सामने बार-बार उसके हाथ वाले कागजों को आगे करता जा रहा है या कि अपने सामने वाली मेज़ पर बिखरी पुस्तकों को घर ले जाने के लिए बटोर कर थैले में रखता जा रहा है तो क्या आपको उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति पर विश्वास होगा? नहीं, कभी नहीं। आपको तो उसके तत्कालीन वाचेतर क्रियाकलाप से ही साफतौर पर पता चल जाएगा कि समय रुचि दिखाई नहीं पड़ती। अनुसंधान कार्य इस बात के गवाह हैं कि जब किसी व्यक्ति की वाचिक अभिव्यक्ति और वाचेतर अभिव्यक्ति (यानी उसकी शरीर-भाषा) में मेल न दिखाई पड़े तो लोग उसके हावभागों से ही सही अर्थ ग्रहण कर लेते हैं।

जब संघर्ष की स्थिति हो तो वाचेतर संप्रेषण और भी अधिक सार्थक होता है। ऐसे समय में संघर्षरत व्यक्ति एक-दूसरे के वाचेतर संप्रेषण पर यानी उनकी शरीर-भाषा पर अधिक ध्यान देते हैं। तब वे उनके बोलने के ढंग, उनके विशिष्ट शब्द प्रयोग और उस/उन पर दिए गए बलाघात् को सार्थक मानते हुए अर्थ-ग्रहण करते हैं। दूसरे पक्ष की शरीर-भाषा पर ध्यान केंद्रित करके ही परस्पर संघर्ष की स्थिति तीव्र से तीव्रतर और तीव्रता से तीव्रतम होते देखी गई है। यदि हम यह आशा रखते हैं कि संघर्षरत प्राणियों के बीच की इस स्थिति का प्रबंधन ठीक हो और वे संघर्ष का प्रभावी हल ढूँढ सकें तो उनमें वाचेतर संप्रेषण कौशलों की अच्छी समय होनी चाहिए।

iv) **सक्रिय श्रवणः** किसी की कही बात को (ध्यानपूर्वक) सुनना बहुत ही कठिन कार्य है, कम-से-कम बैठे रहकर जब वह बोल रहा हो तो उसकी ओर देखते रहने से तो अधिक कठिन है ही। यहाँ सक्रिय शरीर-भाषा, प्रश्नोत्तर और तथ्यों तथा भावनाओं का सार-संक्षेपण भी सम्मिलित है। सक्रिय श्रवण के लिए श्रोता में ये बातें भी होना आवश्यक है : संप्रेषण के लिए समय और स्थान का चयन एवं उनका सुखकर होना, ध्यान-उच्चाटनकारी आंतरिक और बाह्य कारकों का न्यूनतम होना, अनुमान लगाने की स्थिति को दूर रखना तथा परामर्श देने की स्थिति से बचते रहना। कई बार हम लोगों ने अनुभव किया होगा कि जो व्यक्ति हमारी बात सुनना नहीं चाहता या जिसमें हमारी बात सुनने की पर्याप्त सामर्थ्य नहीं है। उससे हम बैठे-बिठाए ही झगड़ा मोल ले लेते हैं और अवसाद से घिर जाते हैं या कहें हताश हो जाते हैं। हो सकता है कि ऐसे लोग हमारी बात सुनने से इसलिए विरत हो गए हों कि वे इस तरह अपने क्रोध का प्रकटीकरण चाहते हों या कि वे अपने को सही साबित करना चाहते हों या कि दूसरे पर दोषारोपण करना उनकी नीयत हो। हमें न सुनने का एक कारण यह भी हो सकता है कि हमारी बात को न सुनते हुए वे अपने तर्कों का कोई नया जाल बुनने में लगे हों। हमने कई बात ऐसी स्थितियों का सामना भी किया होगा कि जिन लोगों की गिनती हम अच्छे श्रोतावर्ग में करते आए हैं, वे ही हमारी बातों पर कान नहीं देते। हमें आश्चर्य तब अधिक होता है जब ध्यानपूर्वक सुनने वाले, अच्छी शरीर-भाषा का प्रयोग करने वाले, तथ्यों का सार-संक्षेप प्रस्तुत करने वाले, हमारी भावनाओं को समझने वाले, स्पष्टीकरण के लिए प्रश्न पर प्रश्न दागने वाले तथा अवांछित परामर्श न देने वाले लोग ही हमारी बातों पर ध्यान नहीं देते।

संघर्ष प्रबंधन के लिए सक्रिय श्रवण एक महत्वपूर्ण कौशल माना जाता है। किसी प्रकार की संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर जो अच्छा श्रोता हो, अधिक स्पष्टीकरण के

लिए प्रश्न पूछता हो, तथ्यों और भावनाओं का विश्लेषण कर उन्हें संक्षेप में प्रस्तुत करना जानता हो वह व्यक्ति वक्ता को यह आभास अवश्य करवा देता हैं कि श्रोता उसकी बातों पर ध्यान दे रहा है। कई संघर्षों का तो चुटकी में हल इसलिए हो जाता है कि श्रोतावर्ग ने संघर्षरत व्यक्ति की बातें ध्यान से सुनी हैं। ऐसे समय में पीड़ित पक्ष यह मान लेता है कि चूँकि दूसरे पक्ष ने उसकी बातों पर ध्यान दिया है इसलिए हो सकता है कि यह संघर्ष की स्थिति केवल गलतफहमी यानी मात्र भ्रांति का ही परिणाम हो। यहाँ तक कि जब दोनों पक्षों के बीच, संघर्ष का कारण वास्तविक असहमति ही क्यों न रहा हो, दोनों पक्षों के तर्कों को यदि ध्यानपूर्वक सुन लिया जाए तो हो सकता है कि दोनों ही पक्ष उस संघर्ष के उचित हल के लिए सहज ही उद्यत हो जाएँ।

आहत भावनाएँ, गलतफहमियाँ (भ्रांतियाँ) और भ्रांत प्रत्यक्षण शुरू हुए संघर्ष को बहुत जल्दी भड़का देते हैं। संघर्ष में रत व्यक्ति यदि संघर्ष के आरंभ में ही सक्रिय श्रवण कौशल को अपना लें तो उस संघर्ष के जल्दी हल हो जाने की संभावना बढ़ जाती है।

v) **प्रत्यक्षण वैभिन्यः** गिलास आधा खाली है या आधा भरा हुआ? क्या अध्यापक ने विद्यार्थी को कोपदृष्टि से निहारा? संघर्ष तो एक सहज/प्राकृतिक प्रक्रिया है क्योंकि किसी की बात या वस्तु को देखने का नज़रिया अलग-अलग होता है। किसी भी संघर्ष की स्थिति का प्रभावपूर्ण तरीके से हल ढूँढने के लिए सबसे महत्वपूर्ण पहली आवश्यकता यह है कि एक पक्ष दूसरे पक्ष के नजरिए को जानने के लिए तैयार हो, फिर भले ही उस पक्ष के दृष्टिकोण से वह सहमत न भी हो। इसलिए दोनों पक्षों को चाहिए कि वे क्षणभर के लिए ही सही, अपने दृष्टिकोण को, अपनी भावनाओं को दरकिनार कर दूसरे के दृष्टिकोण को, उसकी भावनाओं को, उसकी आवश्यकताओं आदि को ठीक तरह से जानने, सुनने के लिए तैयार हो जाएँ। जब पहली यह मान लिया जाए कि दोनों पक्षों का नजरिया अलग-अलग है तो फिर वे दोनों ही समान आधार पर संघर्ष के हल के लिए आगे बढ़ सकते हैं।

vi) **विचारावेशः** विचारावेश का लक्ष्य है – किसी भी समस्या के समाधान के संभावित सभी (या एकाधिक) उपायों की पहचान करना। इसके भी कुछ आवश्यक घटक हैं। जैसे – रचनात्मक होना, सभी विचारों की अच्छाइयों-बुराइयों पर पहले ध्यान दिए बिना उनकी सूची तैयार कर लेना, फिर अपने मतानुसार नए-नए विचारों का सुझाव देना। इस प्रक्रिया को अपनाने से लोगों को पता चल जाता है कि किसी भी समस्या के समाधान के कई संभावित हल उपलब्ध हैं। यह जानकारी मिल जाने के बाद वे आपस में मिल-बैठकर सहयोग की भावना से समस्या का समुचित हल खोज सकते हैं।

vii) **तीसरे पक्ष की मध्यस्थताः** किसी भी समस्या के समाधान के लिए एक तटस्थ तृतीय पक्ष यानी मध्यस्थ उपलब्ध हो तो वह विवादग्रस्त दोनों पक्षों को हल ढूँढने में सहायता कर सकता है। मध्यस्थ को तटस्थ ही नहीं पूर्वग्रहग्रस्त भी नहीं होना चाहिए। मध्यस्थ (सामान्य भाषा में बिचौलिया) व्यावसायिक विशेषज्ञ हो सकता है और कोई स्वयंसेवक भी। पर स्वयंसेवक ऐसा हो जो गहन प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति हो। कोई भी मध्यस्थ दोनों पक्षों को आपसी बातचीत के लिए राजी कर सके, उनका मार्गदर्शन करने वाला हो। उसे चाहिए कि वह पहले दोनों पक्षों की सहमति वाली और असहमति वाली बातों को निर्धारित कर लेने में मदद करे। मध्यस्थता की यह प्रक्रिया गोपनीय बनी रही – इस पर ध्यान देना आवश्यक है। मध्यस्थ व्यक्ति को व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ बने रहना चाहिए यानी वह दोनों पक्षों के विचारों को ध्यान से सुने, उन्हें हल ढूँढ़ने में मदद करे, ऐसी भाषा का प्रयोग न करे जो किसी भी पक्ष को अनुचित लगे, यहाँ तक कि

धमकी भरे शब्दों का प्रयोग भी वर्जित है। वातावरण ऐसा तैयार कर दे जो दोनों पक्षों के लिए शिक्षाप्रद हो और उन्हें खुलकर अपनी बात कहने का अवसर प्रदान कर, यानी उनमें किसी प्रकार का भय व्याप्त न हो तो अच्छा। मध्यस्थ को ऐसे निर्णायक कथनों से सदा बचते रहना चाहिए, जैसे – 'तुम सही हो', या 'तुम गलत हो'। उसे ऐसे प्रश्न भी नहीं करने चाहिए, जैसे – 'तो फिर तुमने ऐसा क्यों किया। कहाँ? आदि। उसके प्रश्न इस तरह के होने चाहिए – "तो फिर क्या हुआ?" या "इस पर आपको कैसा लगा? आदि। उसे अपनी ओर से कोई सलाह देने से बचना चाहिए। हाँ, यदि आवश्यकता पड़े तो वह विकल्पों का सुझाव दे सकता है, पर वह सुझाव आदेशात्मक न हो। अंतिम बात यह है कि उसके सारे प्रयत्न दोनों पक्षों को ऐसे प्रतीत हों जैसे उसमें उनकी 'जीत' निहित हो। यदि वह दोनों विरोधियों को समस्या-समाधान के लिए तत्पर दो सहयोगियों में बदल सके तो सर्वोत्तम होगा।

viii) **विकल्पों का मूल्यांकन/परिणामों का पूर्वानुमानः** संभावित समाधानों को सूचीबद्ध कर लेने के बाद कौन-सा समाधान अंतिम सहमति के योग्य है – इसे तय कर लेना अनिवार्य होगा। इसके लिए, दोनों पक्षों के साथ विचार-विमर्श कर लेना ठीक रहेगा। यह भी जानकारी प्राप्त कर लें कि कौन-कौन सा विकल्प किसे पसंद है और किसे नहीं, और यह भी कि पसंद है तो किस कारण और पसंद नहीं है तो उसका कारण क्या है। जो विकल्प दोनों पक्षों को पसंद नहीं आता, उसे सूची में से हटा दिया जाए। फिर दोनों पक्षों से पूछा जाए कि उपलब्ध विकल्पों में से जिसके बारे में उनकी सहमति हो उसके परिणाम उनकी दृष्टि में क्या संभावित हैं। यह जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद जो परिणाम अवांछनीय प्रतीत हों उन विकल्पों को आप स्वयं अलग कर दें। अंत में जो विकल्प बचें उन पर चर्चा जारी रहे ताकि समस्या के अंतिम समाधान तक पहुँचा जा सके।

ix) **सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य की अवधारणा बनाए रखें:** यदि हम यह मान कर चलें कि किसी भी व्यक्ति विशेष के कार्य अन्य सभी व्यक्तियों के कार्य से परस्पर जुड़े हुए होते हैं तो फिर हम यह कह सकते हैं कि हमें भी इस धारणा को व्यवहार रूप में परिणत करना चाहिए। चाहे हमारा परिवार हो, हमारी संस्था हो या पूरा समाज – हमें इस अवधारणा को सदा ध्यान में रखना होगा। हर क्षेत्र में इस बृहत् परिप्रेक्ष्य को लागू करते रहें तो हमारे सभी कार्य प्रभावी बनेंगे। तभी हमें पता चल पाएगा कि काम चाहे छोटा हो या बड़ा – सबकी पूर्ति में कोई-न-कोई कठिनाई अवश्य आती है, सबकी अपनी-अपनी समस्याएँ हैं, जिनसे पार पाने के लिए हमें सही कदम उठाने होंगे। यदि हमारा पहला ही कदम ठीक दिशा में उठता है तो समझ लीजिए लक्ष्य दूर नहीं है, दूर है तो भी हम उसे अवश्य पा लेंगे। हमारे लिए सारी संभावनाओं के द्वार एक-एक कर खुलते जाएँगे।

संघर्ष के समाधान के प्रसंग में स्मरणीय बिन्दु

सबसे पहले समस्या या संघर्ष के स्वरूप को पहचानें और उसे सही रूप में प्रस्तुत करें।

अपनी सारी चिंताओं/भावनाओं को "मैं" परक कथनों से प्रकट करें, न कि "तुम" परक कथनों से

समस्या को समझने के लिए उसे ध्यानपूर्वक सुनें। बीच-बीच में रोक-टोक न करें।

आपने अब तक जो सुना है, उसे ठीक तरह से समझा है या नहीं – इसकी जाँच करने के लिए अपने शब्दों में उसका सारांश बताते रहें।

सदा ध्यान में रखें कि सबके साथ हँसी में शामिल होना तो ठीक है, पर किसी की भी हँसी उड़ाने में शामिल होना ठीक नहीं।

अंतिम हल तक पहुँचना तभी संभव होगा जब क्षमा-याचना का आदान-प्रदान होता रहे और/या फिर से मेल-मिलाप अर्थात् मैत्री-भावना स्थापित हो जाए और/या हर व्यक्ति/दल/पक्ष उस समाधान तक पहुँच जाए जिसे वह अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से उतार सके और फिर अन्य पक्षों को भी अपने साथ लेकर आगे बढ़ता जाए।

8.8 सारांश

संघर्ष (पैदा हो जाना) एक सामान्य परिघटना है कोई अनोखी या अनहोनी वस्तु नहीं। इसे ऐसी कोई भी स्थिति मानना ठीक होगा जिसमें बेमेल या कहें परस्पर विरूद्ध गतिविधियाँ, भावनाएँ घुल मिल गई हों या एक-दूसरे से जुड़ती चली गई हों। संघर्ष किसी एक व्यक्ति के मन में पैदा हो सकता है (जिसे द्वंद्व की स्थिति कहना ठीक होगा) और ऐसे दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच भी, जो एक-दूसरे को जानते-पहचानते हों। जब संघर्ष पैदा हो जाए और उसके समाधान हेतु यदि समुचित उपाय अपनाए जाएँ (जिसे 'प्रबंधन' कहा जाता है) तो उससे नए-नए विचार जन्म ले सकते हैं, कार्य को संपन्न करने के नए-नए तरीके पैदा हो सकते हैं। किंतु ध्यान रहे – संघर्ष की अति हो जाने पर ध्यान का संकेंद्रण भंग हो सकता है, उससे तनाव बढ़ सकता है। संघर्ष से पार पाने की, उसे हल करने की विभिन्न शैलियाँ हैं। कुछ शैलियाँ/तरीके तो ऐसी/ऐसे हैं जिनसे अस्थायी समाधान तक पहुँचा जा सकता है, अंतिम या स्थायी समाधान तक नहीं। जब आप संघर्ष के समाधान के लिए सबका सहयोग प्राप्त करने का तरीका अपनाते हैं तब वह तरीका दोनों/सभी पक्षों के परस्पर हित में तथा टिकाऊ परिणाम में साधक होगा।

8.9 संदर्भ एवं कुछ उपयोगी पुस्तकें

पारीक, उदय (1982) : *मैनेजिंग कॉन्फ्लिक्ट एंड कोलाबोरेशन,* नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड एंड आई बी एच पब्लिशिंग कम्पनी प्रा. लि.।

लिकर्ट, रेन्सिस, (1976) : *न्यू वेज ऑफ मैनेजिंग कॉन्फ्लिक्ट,* मैकग्रा।

पेस्टनजी, डी.एम. (1992) : *स्ट्रेस एंड कोपिंग - द इंडियन एक्सपियरेन्स,* नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

इग्नू (1992), *एम.एस.-21 ग्रुप एंड इनरग्रुप प्रोसेसेज,* नई दिल्ली।